इकाई 10 रीति सम्प्रदाय : अवधारणा एवं आयाम

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य

10.1 प्रस्तावना

10.2 रीति निरूपण

10.3 रीति शब्द का अभिप्राय

10.4 प्रमुख रीति समर्थक आचार्य

10.5 रीति और गुण

10.6 शब्द-गुण तथा अर्थ-गुण

10.7 गुण के प्रकार

10.8 रीति के प्रकार

10.9 सारांश

10.10 अवधारणात्मक शब्द

10.11 उपयोगी पुस्तकें

10.12 बोध प्रश्न

10.13 बोध प्रश्नों के उत्तर

10.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़कर आप :

- रीति सम्प्रदाय की अवधारणा के बारे में जान सकेंगे,
- रीति निरूपण एवं रीति के आयामों के बारे में जान सकेंगे,
- रीति शब्द का अभिप्राय और प्रमुख रीति समर्थक आचार्यों के बारे में जान सकेंगे,
- रीति और गुण के सम्बन्ध और काव्य गुण के प्रकारों को जान सकेंगे, और
- रीति के विभिन्न प्रकारों के बारे में बता सकेंगे।

10.1 प्रस्तावना

काव्य रचना-प्रक्रिया भाषा के माध्यम से चलती है। हमारा समूचा जीवन व्यवहार ही भाषा के माध्यम से परिचालित होता है। रोजमर्रा की प्रचलित भाषा हमें विरासत में उपलब्ध होती है और इसी भाषा सामग्री को हम अपने अनुभव, विचार आदि को दूसरों

BHDC-106.indd 126 19-03-2021 08:51:37

तक संप्रेषित करने के लिए उपयोग में लाते हैं। लोक व्यवहार में प्रचलित विरासत में मिली इसी भाषा का प्रयोग कवि भी अपनी काव्य रचना में करता है। अपनी रचना प्रक्रिया के क्रम में कवि इस भाषा के विन्यास को किसी विशिष्ट संवेदना या अनूभूति की अभिव्यक्ति के लिए किंचित तोड़-फोड़ देता है। इस तोड़-फोड़ से भाषा के पद या पद-समूह किन्हीं विशिष्ट अर्थवक्ताओं से प्रदीप्त हो उठते हैं और उनमें सौंदर्य और रमणीयता उत्पन्न हो जाती है। कवि के लिए भाषा के रूप का नहीं उसके स्वरूप का महत्व होता है। किसी खास संवेदना की अभिव्यक्ति के लिए विशिष्ट-पद रचना द्वारा प्रचलित भाषा के स्वरूप में हुए परिवर्तन से उत्पन्न अर्थ और उस खास संवेदना का पाठकों तक संप्रेषण और समान उद्दीपन रचना प्रक्रिया का अनिवार्य अंग है। भारतीय काव्यशास्त्रियों ने कवि की अनुभूति को विशिष्ट पद-रचना द्वारा अभिव्यक्त करने के इस क्रम को मार्ग या रीति की संज्ञा दी है। पाश्चात्य् काव्य चिन्तन में इसे ही शैली (Style) की संज्ञा दी गयी है।

काव्य रचना की इस 'रीति' का अध्ययन रीति सम्प्रदाय में किया गया है। रीति-सिद्धान्त-सम्बन्धी चर्चा करने वाला शास्त्र ही रीतिशास्त्र है। रीति सम्प्रदाय की परम्परा हिंदी को संस्कृत काव्यशास्त्र से प्राप्त हुई है। प्रस्तुत पाठ में हम रीति सम्प्रदाय की अवधारणा और उसके विभिन्न आयामों की जानकारी प्राप्त करेंगे।

10.2 रीति निरूपण

भारतीय काव्यशास्त्र में रीति के स्वरूप की चर्चा नाटक तथा काव्य को ध्यान में रखकर की गई है जबकि पाश्चात्य काव्यशास्त्र में शैली की विवेचना भाषण कला (Rhetoric) के संदर्भ में शुरू हुई थी। इसके पश्चात् लिखित भाषा के स्वरूप विश्लेषण के संदर्भ में भी उसका प्रयोग होने लगा। भारतीय काव्यशास्त्री साहित्य अथवा काव्य-भाषा के 'पदसंघटनाक्रम' को, 'विशिष्ट पद-रचना' या 'वचन-विन्यास' को ध्यान में रखकर रीति के स्वरूप को समझाने का उपक्रम करते रहे। उन्होंने पाश्चात्य काव्यशास्त्रियों की तरह भाषा को इस एक विशेष क्रम में प्रयोग किए जाने के पीछे छुपे कवि व्यक्तित्व को कुछ खास महत्व नहीं दिया। भारतीय काव्यशास्त्र में रीति को काव्य भाषा की विशेष गुणों वाली पद-रचना माना जाता है जबकि पाश्चात्य काव्यशास्त्र में शैली को मुख्य तथा कवि के विशिष्ट व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति मानने का चलन है।

'रीति' का अर्थ है लिखने का क्रम या विधान। लिखने का यह क्रम या विशिष्ट पद-संघटन प्रत्येक कवि की अपनी निजी विशिष्टता होती है। पद-संघटन की यह निजी विशिष्टता ही कवि के मैनरिज्म या रीति या पंथ का निर्माण करती है। पूर्व से प्रचलित संस्कृत काव्य रचनाओं में प्रयुक्त भाषा की विशिष्टताओं को परखने पर काव्यशास्त्रियों को उनमें विशेष प्रकार की पद-रचना के दर्शन हुए। संस्कृत तथा उसके गहरे प्रभाव वाली हिंदी भाषा की 'रीति' में जो लम्बी-लम्बी समास-युक्त रचनाएँ थीं, वहीं उनकी विशिष्टता थी और इस पद-रचना से ही वे जान पाए कि काव्य की भाषा व्यवहारिक भाषा से भिन्न होती है। रीति से सम्बन्धित कुछ प्रसिद्ध परिभाषाएँ इस बात की पुष्टि करती हैं। वामन के अनुसार 'रीति' का अर्थ विशेष प्रकार की पद-रचना है। राजशेखर रीति को 'वचन-विन्यास-क्रम' कहते हैं। विश्वनाथ के अनुसार रीति का अर्थ 'पद का संयोजन' है। इन परिभाषाओं पर विचार करने से ज्ञात होता है इन काव्यशास्त्रियों ने रीति के संदर्भ में लेखन में परिलक्षित होने वाले पदों या पद-संघटन की विशेष प्रकार की रचना, विन्यास, संयोजन तथा भंगिमा को मानदण्ड के रूप में प्रयोग किया था। प्रश्न उठता है कि काव्यभाषा की पद-रचना या पद-विन्यास अगर

BHDC-106.indd 127 19-03-2021 08:51:37

विशेष है तो यह विशेषता उनमें होती कहाँ है? इसके प्रत्युत्तर में वामन कहते हैं कि वह 'गुण' में होती है अर्थात् रीति, विशेष पद-रचना है और यह विशेषता अपनी-अपनी पद रचनाएँ अपने में समाहित करने वालों गुणों में होती है। इस तरह से कुछ विशेष गुणों से समाविष्ट या गुण विशेष वाली पद रचना ही रीति है और ऐसी रीति को ही वामन काव्य की आत्मा मानते हैं।

रीतिशास्त्र या रीति काव्य लिखने की परम्परा हिंदी में संस्कृत साहित्य से प्राप्त हुई है, लेकिन रीतिशास्त्र या रीति-काव्य का जो वास्तविक अर्थ है उससे विशिष्ट अर्थों में भिन्न है। संस्कृत काव्यशास्त्रियों जैसे वामन ने रीति को उसी प्रकार काव्य की आत्मा माना जैसे रस और ध्वनि। ऐसी स्थिति में रीतिशास्त्र के अन्तर्गत केवल उन्हीं ग्रंथों की चर्चा होनी चाहिए थी जिनमें रीति को काव्य की आत्मा मानकर काव्य के स्वरूप का विश्लेषण किया गया हो। किन्तु हिंदी साहित्य के इतिहासकारों ने उत्तर-मध्यकाल को 'रीतिकाल' की संज्ञा देते हुए रीति को व्यापक अर्थ में ग्रहण किया। उन्होंने रीति या मार्ग को काव्य-रीति या काव्य-लक्षण के रूप में ग्रहण करके उस काल को रीतिकाल कहा है। ऐसी स्थिति में रीतिशास्त्र के अन्तर्गत केवल रीति-सिद्धान्त की रचना करने वाले ग्रन्थ ही नहीं वरन् उन सभी ग्रंथों का समावेश हो जाता है जिनमें काव्य के लक्षण देने का प्रयत्न किया गया हो। अतः हिंदी साहित्य में रीतिशास्त्र या सम्प्रदाय का तात्पर्य उन लक्षण देने वाले या सिद्धान्त चर्चा करने वाले सभी ग्रंथों से है जिनमें अलंकार, रस, रीति, वक्रोक्ति, ध्वनि आदि के स्वरूप, भेद, अवयवों आदि के लक्षण दिए गए हों। ऐसे ही रीति-काव्य उस काव्य को कहेंगे जिसमें अलंकार, रस, रीति, वक्रोक्ति आदि के उदाहरण के रूप में या इनका ध्यान रखकर काव्य रचना हुई हो, भले ही इनके लक्षण न भी दिए गए हों।

10.3 रीति शब्द का अभिप्राय

रीति शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम वामन ने किया है। भोज की परिभाषा को ग्रहण करते हुए 'रीति' शब्द के अर्थ पर आचार्य बलदेव उपाध्याय ने लिखा है– ''रीति' शब्द रीङ्. धातु से क्विन प्रत्यय के योग से बनता है। अतः रीति का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ है—मार्ग। पन्था, विथि, गति, प्रस्थान, सब रीति के ही पर्यायवाची शब्द हैं।'' वह मार्ग, पन्थ या विथि जिसमें काव्य के अन्तर्गत शब्द-विन्यास की कला बतायी जाए, रीति कहलाती है। जैसे शरीर में अंग-विन्यास का महत्व है वैसे ही काव्य में शब्द-विन्यास का। जो अंग जहाँ, जैसा होना चाहिए वहाँ, वैसा हो तभी वह सुन्दर लगता है। कान की जगह आँख या आदमी का कान हाथी के कान जितना बड़ा हो जाए तो उसका सौंदर्य कम हो जाएगा। इसी तरह जहाँ, जैसा शब्द प्रयोग उचित हो वहाँ वैसा होने पर ही काव्य में सुन्दरता आती है।

काव्यशास्त्र में 'रीति' का प्रयोग दो अर्थों में होता है—एक काव्य रचना की पद्धति, शैली आदि के अर्थ में तथा दूसरा, संस्कृत के एक सम्प्रदाय-विशेष के अर्थ में और वह सम्प्रदाय है, आचार्य वामन (9वीं शताब्दी) द्वारा प्रवर्तित रीति सम्प्रदाय।

10.4 प्रमुख रीति समर्थक आचार्य

यद्यपि वामन से पूर्व भामह और दण्डी ने रीति की विवेचना की है, किन्तु इनमें से किसी ने भी रीति का लक्षण और उसकी परिभाषा नहीं बताई। सर्वप्रथम वामन ने 9वीं शताब्दी में रीति के लक्षण बताते हुए उसकी परिभाषा की इस तरह से रीति

BHDC-106.indd 128 19-03-2021 08:51:37

शब्द के प्रथम उपयोगकर्ता, रीति के लक्षणकर्ता के रूप में वामन ही रीति सम्प्रदाय के संस्थापक हैं।

वामन : आचार्य दण्डी जिसे 'मार्ग' कहते हैं उसे ही सर्वप्रथम वामन ने 'रीति' कहा है। 'रीति' शब्द का काव्य या काव्य-मार्ग के व्यापक अर्थ में प्रयोग करते हुए उन्होंने उसकी व्युत्पत्तिमूलक व्याख्या भी की है–

विशिष्ट पद-रचना रीतिः

विशेषो गुणात्मा

अर्थात विशिष्ट पद-रचना ही रीति है। यहाँ विशिष्ट का अर्थ है गुणसम्पन्न-विशेषा गुणात्मा। इस प्रकार कह सकते हैं कि वामन काव्य का आधार रीति को तथा रीति का आधार गुण को मानते हैं– अतः गुण ही काव्य का सर्वोत्तम तत्व सिद्ध होता है। वामन के मत से रीति काव्य की आत्मा है। विशिष्ट पद-रचना रीति हुई। उनकी दृष्टि में रीति के प्रमुखतः तीन प्रकार हैं। वैदर्भी, गौडीया और पांचाली।

वैदर्भी : विदर्भादि देशों में प्रचलित रीति वैदर्भी है। यह वैदर्भी रीति समग्र गुणों से युक्त होती है। यह दोषरहित, वीणा के स्वरों के समान मधुर कुछ इस प्रकार से विशिष्ट है, जो कि शब्द और अर्थ के चमत्कार से भिन्न है।

गौडिया रीति : गौडीया रीति में 'ओज' और 'कान्ति' नामक गुण ही होते हैं। इसमें समास का बहुत प्रयोग होता है तथा यह उग्र पदों वाली रीति होती है।

पांचाली : वैदर्भी और गौडी के अतिरिक्त वामन ने एक तीसरे भेद 'पांचाली' की कल्पना की। इसमें माधुर्य और सुकुमारता का बाहुल्य होता है।

वामन के अनुसार, यदि काव्य की आत्मा रीति है तो रीति की आत्मा है वैदर्भी रीति। वैदर्भी ही ऐसी रीति है जिसमें दसों गुणों का पूर्ण परिपाक देखा जाता है। वैदर्भी रीति ही सर्वश्रेष्ठ रीति है।

रूद्रट : वामन के पश्चात् परवर्ती आचार्यों ने रीति की परम्परा को आगे बढ़ाया। रूद्रट ने वामन की तीन रीतियों के अतिरिक्त एक चौथे भेद–'लाटी' की उद्भावना की। साथ ही साथ उन्होंने रीतियों के एक सामान्य आधार की भी कल्पना की। उनके विचार से समास ही रीति का निर्णायक तत्व है– जहाँ समास बिल्कुल न हों वह वैदर्भी, जहाँ लघु हो वह पांचाली और जहाँ मध्य समाज व दीर्घ समास हों, वे क्रमशः लाटी व गौडी रीति मानी जानी चाहिए। इसके अतिरिक्त किस रस में कौन सी रीति प्रयुक्त होनी चाहिए इसका भी विवेचन उन्होंने किया है, जैसे श्रृंगार, करुण आदि में वैदर्भी और पांचाली या रौद्र में गौडी का प्रयोग होना चाहिए।

राजशेखर (9वीं शताब्दी) : राजशेखर ने प्रवृत्ति, वृत्ति एवं रीति के अन्तर को सुस्पष्ट करते हुए रीति सम्बन्धी पूर्व विवेचन को व्यवस्थित रूप में प्रस्तुत किया। उनके अनुसार– "वेष-विन्यास क्रमः प्रवृत्ति, विलास-विन्यास क्रमों वृत्तिः, वचन-विन्यास क्रमो रीतिः" अर्थात् वेश-विन्यास का प्रकार प्रवृत्ति है, विलास-विन्यास का प्रकार वृत्ति तथा वचन-विन्यास का प्रकार रीति है। अर्थात् प्रवृत्ति का सम्बन्ध वेशभूषादि, वृत्ति का क्रियाकलाप-व्यवहार तथा रीति का सम्बन्ध भाषा एवं बोलचाल आदि से है। रीति के भेदों के अन्तर्गत राजशेखर ने रूद्रट की लाटी के महत्व को स्वीकार न कर

BHDC-106.indd 129 19-03-2021 08:51:37

केवल वैदर्भी, पांचाली एवं गौडी को ही मान्यता दी। राजशेखर के मतानुसार वैदर्भी समास रहित, स्थानानुप्रास तथा योगवृत्ति से युक्त पांचाली अल्पसमास, स्वल्पानुप्रास और उपचार-वृत्ति से युक्त तथा गौडी दीर्घ समास, अनुप्रासयुक्त तथा योगवृत्ति परम्परायुक्त होती है।

कुन्तक : 'वक्रोक्तिजीवितम्' के लेखक आचार्य कुन्तक ने रीति की अवधारणा में महत्वपूर्ण परिवर्तन उपस्थित करते हुए उसे 'कवि-स्वभाव' के रूप में ग्रहण किया। उन्होंने काव्यशैली या रीतियों के प्रादेशिक वर्ग-विभाजन को अस्वीकार करते हुए माना कि 'रीति' कवि मार्ग है तथा कवि जनों के स्वभाव क्रम से इसका ग्रहण होता है। उनके शब्दों में 'कविस्वभावभेदत्वात् मार्गः (रीतिः) है। वे मार्ग को तीन भागों में विभक्त करते हैं– सुकुमार विचित्र तथा मध्यम।

सम्प्रति तत्र ये मार्गाः कविप्रस्थानहेतवः।

सुकुमारो विचित्रश्च मध्यमश्चोमयात्मकः।।

दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि यह वर्गीकरण क्रमशः सरल शैली, चमत्कार शैली तथा समन्वित शैली के उदाहरण हैं।

सुकुमार मार्ग : इस मार्ग में प्रतिभा-जनित सहज नैसर्गिक गुणों एवं विशेषताओं का समावेश रहता है। उक्ति-वैचित्र्य या अलंकार अनायास और सहज रूप से आते हैं। इसमें रसप्रवणता होती है तथा प्रसाद एवं माधुर्यगुण का बाहुल्य होता है।

विचित्र मार्ग : ये आलंकारिक मार्ग या कला-मार्ग हैं। इसमें वर्ण-चमत्कार, शब्द-चमत्कार, पदावली लालित्य, अर्थ की वक्रता, उक्ति की विचित्रता आदि विशेषताएँ होती हैं।

मध्यम मार्ग : यह सन्तुलित मार्ग है। सुकुमारता और विचित्रता का सहज समन्वय इस मार्ग में होता है। इसमें भाव एवं कला की विशेषताएँ समान रूप से विद्यमान रहती हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आचार्य कुन्तक का रीतिभेद सहजता एवं अलंकृति पर आधारित है। कुन्तक ने रीति को कवि-प्रस्थान हेतु कहते हुए रीति का निर्णायक आधार कवि-स्वभाव को बताया है।

भोज (ग्यारहवीं शताब्दी) : भोज ने वैदर्भी, गौडी, पांचाली और लाटी के अतिरिक्त दो और नए भेदों– आवन्तिका और माधवी की सृष्टि करके उनकी संख्या छः तक पहुँचा दी किन्तु परवर्ती विद्वान वामन के तीन भेदों को ही मानते रहे। भोज के अनुसार रीति की व्युत्पत्ति-मूलक परिभाषा है–

वैदर्भादि–कृतः पन्थाः काव्ये मार्ग इति स्मृताः।

रीङ्.गताविति धातोस्सा व्युत्पत्त्या रीतिरुच्यते।।

अर्थात् वैदर्भादि पन्था (पथ) काव्य में मार्ग कहलाते हैं। गत्यर्थक 'रीङ्.' धातु से व्युत्पन्न होने के कारण वही रीति कहलाती है। इस प्रकार भोज ने मार्ग, पन्थाः या पथ और रीति को व्युत्पत्ति-परक अर्थ में पर्याय सिद्ध करते हुए तीनों की अभिन्नता

BHDC-106.indd 130 19-03-2021 08:51:37

प्रतिपादित की है। उनके अनुसार रीति का अर्थ कवि-गमन-मार्ग है जिसे कुन्तक ने कवि-प्रस्थान हेतु कहा है।

परवर्ती आचार्य रीति एवं वृत्ति को समाविष्ट करने का प्रयास करते हैं। आचार्य सिंह भूपाल 'पदविन्यास भंगी रीतिः' के रूप में परिभाषित करते हुए रीति को तीन भागों में विभक्त करते हैं– कोमला (वैदर्भी), कठिना (गौडीया) तथा मिश्र (पांचाली)। काव्यप्रकाशकार भम्मट वर्णानुयायी माधुर्य, ओज, प्रसाद गुणों की चर्चा करते हुए उपनागरिका (माधुर्ययुक्त), परुषा (ओज युक्त), कोमला (प्रसाद युक्त) इन तीन वृत्तियों मे वैदर्भी, गौडीया तथा पांचाली रीति को सन्निविष्ट करते हैं।

10.5 रीति और गुण

दण्डी ने गुण को रीति का मूल तत्व माना है। वामन ने गुण और रीति के इस सम्बन्ध को और भी दृढ़ करते हुए लिखा–विशिष्टा पद रचना रीतिः। विशेषो गुणात्मा। अर्थात् रीति का वैशिष्ट गुणात्मक है। रीति को विशिष्ट पद रचना और गुणों को उनका मूल तत्व मानते हुए वामन ने शब्द और अर्थ के आधार-भेद से गुणों के दो वर्ग कर दिये हैः शब्द-गुण और अर्थ-गुण। वामन के शब्द-गुण प्रायः सभी वर्ण-योजना, पद-बन्ध या शब्द-समूह के चमत्कार हैं और अर्थ-गुणों का आधार अर्थ-सौंदर्य है।

वामन से पहले भरत ने गुणों को भावगत विशेषता के रूप में स्वीकार करते हुए गुणों की संख्या दस माना है–

> श्लेषः प्रसादः समता समाधिः
> माधुर्यभोजः पदसौकुमार्यम्।
> अर्थस्य च व्यक्तिरुदारता च
> कान्तिश्च काव्यस्य गुणा दर्शते।।

अर्थात् श्लेष, प्रसाद, समता, समाधि, माधुर्य, ओज, पद-सौकुमार्य, अर्थ-व्यक्ति, उदारता एवं कान्ति ये दस गुण हैं। दण्डी ने भी इन्हीं गुणों को माना था। वामन स्थापित करते हैं कि रीतिकाव्य की आत्मा है जो गुणों पर आश्रित है। दण्डी और वामन की गुण सम्बन्धी धारणाओं में अन्तर है। दण्डी काव्य-शोभा का हेतु अलंकार मानते हैं न कि गुण। इस तरह वामन के विचार से गुण का महत्व अत्यधिक है। वस्तुतः गुणों का सर्वप्रथम लक्षण भी वामन ने ही स्पष्ट किया। उनके विचार से 'काव्य के शोभा-कारक धर्म गुण कहलाते हैं'– (काव्य-शोभायाः कर्तारो धर्मा गुणाः)। अलंकार गुण द्वारा सम्पन्न काव्य-शोभा को बढ़ाने वाले हैं, वे शोभा के मूल हेतु नहीं है। स्पष्टतः यह लक्षण इतना व्यापक है कि इसके अनुसार वे सारे तत्व जिससे कि काव्य-सौंदर्य की सृष्टि होती है, गुणों के अन्तर्गत आ जाते हैं। शब्द और अर्थ का भेद करते हुए वामन ने गुणों की संख्या बीस निश्चित की है।

वामन के विशिष्टा पद रचना रीतिः। विशेषो गुणात्मा' सूत्र की व्याख्या करते हुए आगे चलकर आनन्दवर्धन ने तीन विकल्प उपस्थित किए हैं–

1) क्या रीति और गुण अभिन्न हैं?

2) क्या रीति गुणाश्रित है?

BHDC-106.indd 131 19-03-2021 08:51:37

3) क्या गुण रीति-आश्रित हैं?

वामन ने रीति और गुण को अभिन्न माना है और उद्भट ने गुण को रीति-आश्रित। इन दोनों ही मतों को अमान्य करते हुए आनन्दवर्धन ने रीति को गुणाश्रित माना है।

गुणानाश्रित्य तिष्ठन्ती माधुर्यादीन्

आनन्दवर्धन का पक्ष सर्वथा ग्राह्य है। रीति गुण के आश्रित है– शब्द-समूह, वर्ण-समूह रूपी पद रचना का स्वरूप माधुर्य, ओज आदि के द्वारा ही निर्धारित होता है। आनन्दवर्धन मानते हैं कि गुण रस-धर्म से जुड़े होते हैं। इस दृष्टि से की पद-रचना मूलतः रसाभिव्यक्ति के ही साधन होती है। रीति का मुख्य कार्य है रस की गई अभिव्यक्ति करना और रस की अभिव्यक्ति वह प्रत्यक्ष रूप से नहीं, गुण के आश्रय से ही कर सकती है। वह माधुर्य, ओज और प्रसाद के द्वारा चित्त को द्रवित, दीप्त और परिव्याप्त करती हुए रस-दशा तक पहुँचाने में सहायक होती है। आनन्दवर्धन के इस मत को स्वीकार करने में कोई बाधा नहीं कि रीति गुण के आश्रित है, परन्तु गुण भी रीति-निरपेक्ष नहीं है।

निष्कर्षतः रीति और गुण एक नहीं है– परन्तु उनका अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। दोनों में गुण का प्रभाव अपेक्षाकृत अधिक है। रीति मूलतः उसी के आश्रित रहती है। परन्तु गुण भी रीति से अप्रभावित नहीं रहता। रीति के वर्ण-समूह और शब्द-समूह चित्त की द्रुति, दीप्ति और परिव्याप्ति के निश्चय ही बाधक या साधक हो सकते हैं।

10.6 शब्द-गुण तथा अर्थ-गुण

क) शब्द-गुण

1) ओज– गाढ़बन्धत्वमोजः अर्थात रचना की गाढ़ता या गाढ़बन्धत्व 'ओज' गुण कहलाता है। दण्डी के मतानुसार, जब वाक्यों में समासयुक्त पदों की बहुलता होती है तो ओज गुण का उदय होता है। वामन का 'ओज' गुण से अभिप्राय संश्लिष्ट शब्द-रचना से था।

2) प्रसाद– 'शैथिल्यं प्रसादः' अर्थात् रचना की शिथिलता ही प्रसाद गुण है।

3) श्लेष– 'मसृणत्वं श्लेषः' अर्थात् मसृणत्व या कोमलता को श्लेष कहते हैं।

4) समता– 'मार्गाभेदः समता' अर्थात् मार्ग का अभेद या शैली की एकरूपता ही समता गुण है।

5) समाधि– 'आरोहाऽवरोहक्रमः समाधिः' अर्थात् शैली में उतार-चढ़ाव ही समाधि है।

6) माधुर्य– 'पृथक्पदत्वं माधुर्यम्' अर्थात् शब्दों की पृथकता ही माधुर्य गुण है।

7) सौकुमार्यम्– 'अजरठत्वं सौकुमार्यम' अर्थात कठोरता का अभाव ही सौकुमार्य है।

8) उदारता– 'विकटत्वमुदारता' अर्थात् रचना शैली की विकटता ही उदारता है।

9) अर्थ-व्यक्ति– 'अर्थव्यक्तिहेतुत्वमर्थव्यक्तिः' अर्थात वह गुण जिसमें अर्थ की स्पष्ट अभिव्यक्ति होती है, अर्थ-व्यक्ति कहलाता है।

10) कान्ति– 'औज्ज्वल्यं कान्तिः' अर्थात् रचना शैली की उज्ज्वलता या नवीनता का नाम ही कान्ति है।

BHDC-106.indd 132 19-03-2021 08:51:37

शब्दगुणों की उपर्युक्त सूची में कई अन्तर्विरोध हैं। वामन ने रचना के गम्भीर-बन्धत्व को ओज गुण माना है तो आगे चलकर उसके सर्वथा विरोधी गुण-रचना की शिथिलता को भी प्रसाद गुण मान लिया है। एक ओर वे शैली की एकरूपता को समता गुण मानते हैं दूसरी ओर वे शैली के उतार-चढ़ाव को भी गुण मान लेते हैं। कई गुण ऐसे हैं जिनके नाम और अर्थ में परस्पर संगति नहीं बैठती– जैसे– श्लेष, माधुर्य, उदारता आदि गुण। वामन को इन असंगतियों का आभास था तथा उन्होंने इनके निराकरण का प्रयास भी किया। यद्यपि उन्हें सफलता नहीं मिली।

ख) अर्थ-गुण

जिन दस शब्द गुणों का उल्लेख ऊपर किया गया है, वे ही दस अर्थ-गुण भी हैं। उनकी संख्या और नामकरण में कोई विभेद नहीं है, सिर्फ उनकी व्याख्या आचार्य वामन ने अलग तरीके से की है। जहाँ शब्द-गुणों में रचना के प्रगाढ़ बन्धन को ओज कहा गया है, वहाँ अर्थ-गुणों में अर्थ की प्रौढ़ता को ओज गुण माना गया है– ''अर्थस्य प्रौढिरोजः'। इसी तरह अर्थ की विमलता को प्रसाद, क्रामिक घटना को श्लेष, अर्थ की सुगमता को समता, अर्थ के दर्शन को समाधि, उक्ति-वैचित्र्य को माधुर्य, अर्थ की सुकुमारता को सौकुमार्य, अग्राम्यत्व को उदारता, वस्तु के स्वभाव की स्पष्टता को अर्थ-व्यक्ति तथा रस की दीप्ति को कान्ति गुण कहते हैं।

10.7 गुण के प्रकार

रीति के प्रसंग में गुणों का वर्णन अपेक्षित है। गुणों के सम्बन्ध में आचार्यों की भिन्न-भिन्न धारणाएँ हैं। भावगत विशेषता के रूप में स्वीकार करते हुए भरत मुनि ने गुणों की संख्या दस मानी है–

श्लेषः प्रसादः समता समाधिः
माधुर्यमोजः पद सौकुमार्यम्।
अर्थस्य च व्यक्तिरुदारता च
कान्तिश्च काव्यस्य गुणा दषैते।।

आचार्य दण्डी ने भी दस गुण ही माने हैं किन्तु क्रम थोड़ा अलग हैः

श्लेषः प्रसादः समता माधुर्य सुकुमारता।
अर्थव्यक्तिरुदारत्वमोजः कान्तिसमाधयः।।

दण्डी की अनेक परिभाषाएँ भरत से भिन्न है– उनके समाधि, कान्ति आदि गुणों का तो भरत के समाधि, कान्ति आदि से कोई सम्बन्ध ही नहीं है। वे गुणों को मार्ग के आधाररूप में ग्रहण करते हैं। वामन रीति को काव्य की आत्मा बताते हुए उसे गुण पर आधारित बताते हैं। किन्तु दण्डी और वामन की गुण सम्बन्धी अवधारणाओं में भी अन्तर है। दण्डी काव्य-शोभा का हेतु अलंकार मानते हैं न कि गुण जबकि वामन गुण को अत्यधिक महत्व देते हैं। वामन के अनुसार अलंकार, गुण द्वारा सम्पन्न काव्य-शोभा के वर्धक हैं, मूल हेतु नहीं है। पद-रचना के उपर्युक्त दस गुणों को वे स्वीकार करते हैं। वामन के अनुसार पद-रचना के संश्लिष्ट संगठन में ओज, शिथिल संगठन में प्रसाद, अनेक अर्थ जहाँ एक पद से लगें वहाँ श्लेष, शैली की एक समानता-समता, उतार-चढ़ाव का क्रम समाधि, समास-रहित पद-प्रयोग माधुर्य, कठोरता के अभाव से

BHDC-106.indd 133 19-03-2021 08:51:37

सौकुमार्य, जहाँ वर्ण नृत्य से करते हों वहाँ उदारता, जहाँ स्पष्टता वहाँ अर्थव्यक्ति, नव्यता और चमक में कान्ति, गुणों की उपस्थिति मानी जाती है। यह व्याख्या पद रचना की दृष्टि से है। वामन ने अर्थ की दृष्टि से पुनः भिन्न व्याख्या की है। उनके अनुसार अर्थ की प्रौढ़ता ओज, अनेक विशेषताओं का संगठन श्लेष, विषमता का अभाव समता, अर्थ की विशेषता समाधि, उक्तिवैचित्र्य माधुर्य, परुषता का अभाव सौकुमार्य ग्राम्यत्व की हीनता उदारता, स्पष्टार्थता, अर्थव्यक्ति तथा रस की दीप्ति कान्ति है।

आनन्दवर्धन के अनुसार गुण काव्य के धर्म हैं, काव्यांग अर्थात शब्द, अर्थ आदि के नहीं। उनका कथन है–

''तमर्थमवलम्बन्ते येऽडिग्नं ते गुणाः स्मृताः।''

गुण अंगी का धर्म माना गया है, अंग का नहीं। वामन रीति को काव्य की आत्मा मानते हैं। अतः ये गुण रीति के धर्म हैं और काव्य की शोभा को बढ़ाने वाले हैं। दूसरी तरफ आनन्दवर्धन, अभिनव गुप्त, मम्मट आदि आचार्य गुण को रस का धर्म बताते हैं, क्योंकि रस अंगी है। मम्मट के अनुसार–

ये रसस्थाश्निो धर्माः शौर्यादय इवात्मनः।
उत्कर्षहेतवस्ते स्युरचलस्थितयो गुणाः।।

अर्थात जो अंश्नि रस के अंग (सहायक) धर्म (आत्म के शौर्यादि की भांति अनिवार्य धर्म की तरह) निश्चल भाव से विद्यमान होकर रसोत्कर्ष के हेतु बनाते हैं।

मम्मटाचार्य तथा अन्य ध्वनि सम्प्रदाय के आचार्यों ने दस गुणों के अस्तित्व से इन्कार किया। वे केवल तीन गुण माधुर्य, ओज, और प्रसाद मानते हैं। ये गुण रसास्वाद के समय सामाजिक (श्रोता या पाठक) की तीन अवस्थाओं–द्रुति, दीप्ति और प्रसन्नता के साथ सामंजस्य द्वारा निश्चित किए गए हैं। इस तरह से देखने पर माधुर्य श्रृंगारादि का, ओज वीर-रौद्रादि तथा प्रसाद सभी रसों का उपकरण है। श्रृंगार 'परम मधुर परमाह्लादमय' रस है इसलिए माधुर्य का उससे सम्बन्ध स्वाभाविक है। माधुर्य का सम्बन्ध चित्त को द्रवित करने से है अतः विप्रलंभ और करुण रसों में इसकी स्थिति स्वतः सिद्ध है। ओज का सम्बन्ध चित्त की चंचलता या प्रदीप्त हो जाने से है। गुण की दृष्टि से ओज, वीर से अधिक वीभत्स और उससे अधिक रौद्र प्रचण्ड माना जाता है। प्रसाद गुण प्रसन्नता और व्यापकता का द्योतक है।

अतः अंत में हम कह सकते हैं कि पूर्व-ध्वनि काल के दस गुणों और उत्तर-ध्वनि काल के तीनों गुणों में – ये पिछले तीन गुण ही मान्य हुए। ये तीन गुण हैं– माधुर्य, ओज, और प्रसाद। ये क्रमशः चित्त की द्रुति, दीप्ति और व्यापकत्व के सूचक हैं।

10.8 रीति के प्रकार

भामह ने वैदर्भी और गौडी रीति का उल्लेख किया है। आचार्य दण्डी ने इन रीतियों का सम्बन्ध विशेषकर गुणों से स्थापित किया है। उनके विचार से जिसमें दस गुणों का समावेश हो, वह वैदर्भी रीति है और इसके विपरीत जिनमें इन गुणों की शिथिलता हो वह गौडीय रीति है। आचार्य दण्डी ने भी दो ही रीतियों या मार्गों का वर्णन किया है। यद्यपि वे अलंकारवादी थे तथा अलंकारों को ''काव्यशोभाकरान् धर्मान'' के रूप में देखते हैं। आचार्य वामन ने रीति के तीन भेद किए हैं– (1) वैदर्भी (2) गौडी और

पांचाली। इस तरह उत्तरी, पश्चिमी, दक्षिणी और पूर्वी प्रदेशों की साहित्यिक शैली की विशेषताओं के आधार पर रीतिवादी आचार्य इन्हें रीति या मार्ग के रूप में गृहीत करते हैं। आचार्य वामन के मतानुसार रीति काव्य की आत्मा है। विशिष्ट पद रचना रीति है। रीति के तीन प्रकार हैं–

1) **वैदर्भी** : विदर्भादि प्रदेशों में प्रचलित रीति वैदर्भी है। यह वैदर्भी रीति समग्र गुणों से युक्त है। यह दोशरहित तथा वीणा के स्वरों के समान मधुर तथा कुछ इस प्रकार विशिष्ट हैं जो कि शब्द और अर्थ के चमत्कार से भिन्न हैं।

2) **गौडीय रीति** : ओज कान्तिमयी होती है। इसमें मधुरता और सुकुमारता का अभाव होता है। यह समास बहुल और उग्र पदों वाली रीति है।

3) **पांचाली** : माधुर्य और सुकुमारता से सम्पन्न रीति ही पांचाली रीति है।

आचार्य रुद्रट ने रीति की कल्पना अलग आधारों पर की है। उन्होंने रीति को काव्य की आत्मा नहीं माना इसलिए उन्होंने रीति के जो चार भेद किए हैं वे गुणों पर आधारित न होकर समास पर आधारित हैं। उनके अनुसार, वैदर्भी समास रहित शैली है, पांचाली लघु (स्वल्प) समास वाली, लौटीय मध्यम समास वाली तथा गौडी दीर्घ समास वाली रीतियाँ हैं। इस प्रकार रीति के चार भेद हुए– वैदर्भी, पांचाली, लाटी तथा गौडी।

आचार्य कुन्तक ने प्रदेश विशेष की परम्परा के रूप में रीतियों को न देखकर शुद्ध गुणों के आधार पर उनका वर्गीकरण किया। उन्होंने रीति के त्रिमार्ग सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हुए 'वक्रोक्तिजीवितम्' में स्पष्ट कहा–

> सम्प्रति तत्र ये मार्गाः कविप्रस्थानहेतवः।
> सुकुमारों विचित्रश्च मध्यमश्योमयात्मकः।।

कुन्तक ने कवि-स्वभाव के अनुरूप तीन रीतियों या मार्गों को स्वीकार किया– (1) सुकुमार (2) विचित्र (3) मध्यम। इस प्रकार हम देखते हैं कि रीति का विवेचन कई आधारों और दृष्टियों से हुआ है। ये आधार हैं– समास, गुण, अलंकार, वैचित्र्य आदि। इनमें आचार्य कुन्तक ने अपने रीति विवेचन को स्वाभाविक और अधिक सहज ग्राह्य पद्धति पर रखा है।

10.9 सारांश

भारतीय काव्य-शास्त्रियों ने कवि की अनुभूति को विशिष्ट पद-रचना द्वारा अभिव्यक्त करने के क्रम को मार्ग या रीति की संज्ञा दी है। काव्य रचना की इस 'रीति' का अध्ययन रीति-सम्प्रदाय में किया गया है। भारतीय काव्य-शास्त्री साहित्य अथवा काव्य भाषा के 'पद संघटना क्रम' को 'विशिष्ट पद-रचना' या 'वचन-विन्यास' को ध्यान में रखकर रीति के स्वरूप को समझाने की कोशिश करते रहे हैं। उनके अनुसार काव्यभाषा की विशेष गुणों वाली पद रचना 'रीति' है। रीति से सम्बन्धित कुछ प्रसिद्ध परिभाषाएँ इस प्रकार से हैं– वामन के अनुसार रीति का अर्थ विशेष प्रकार की 'पद-रचना' है। राजशेखर 'रीति' को 'वचन-विन्यास-क्रम' कहते हैं। विश्वनाथ के अनुसार रीति का अर्थ 'पद का संयोजन' है। सिंहभूपाल के मतानुसार रीति का अर्थ 'पद-विन्यास भंगिमा' है। काव्य भाषा की पद-रचना या पद-विन्यास की

BHDC-106.indd 135 19-03-2021 08:51:37

विशिष्टिता उसमें निहित 'गुण' में होती है। इस प्रकार कुछ विशेष गुणों से समाविष्ट या गुण विशेष वाली पद-रचना ही रीति है और ऐसी ही रीति को आचार्य वामन काव्य की आत्मा मानते हैं। आचार्य वामन, रुद्रट, राजशेखर, आचार्य कुन्तक, भोज, सिंह भूपाल आदि प्रमुख रीति विवेचक आचार्य हैं। जिन्होंने रीति के संदर्भ में अपने विचार व्यक्त किए गए। वामन ने गुण को रीति का मूल तत्व मानते हुए शब्द और अर्थ के आधार-भेद से गुणों के दो वर्ग कर दियेः शब्द-गुण तथा अर्थ-गुण। वामन के शब्द-गुण प्रायः सभी वर्ण-योजना, पद-बन्ध या शब्द समूह के चमत्कार हैं और अर्थ-गुणों का आधार अर्थ-सौंदर्य हैं। वामन के विचार से काव्य के शोभा-कारक धर्म गुण कहलाते हैं। मम्मटाचार्य तथा अन्य ध्वनि सम्प्रदाय के आचार्यों ने दस गुणों के अस्तित्व से इन्कार करते हुए केवल माधुर्य, ओज तथा प्रसाद गुणों को ही माना ये क्रमशः चित्त की द्रुति, दीप्ति और व्यापकत्व के सूचक हैं। आचार्य वामन ने रीति के तीन भेद किए हैं– वैदर्भी, गौडी तथा पांचाली। आचार्य रुद्रट ने एक चौथी 'लाटी' रीति की कल्पना की। आचार्य कुन्तक ने रीति-विवेचन में क्रान्तिकारी बदलाव लाते हुए कवि स्वभाव के अनुरूप तीन रीतियों या मार्गों की कल्पना की (1) सुकुमार (2) विचित्र (3) मध्यम।

10.10 अवधारणात्मक शब्द

समासः संक्षिप्तीकरण जब दो या दो से अधिक शब्दों से मिलकर नया और छोटा शब्द बनता है तो उस शब्द को समास कहते हैं।

रीति : रीति का अर्थ मार्ग या पन्थ, शब्द-विन्यास है। यह संस्कृत काव्यशास्त्र का एक सम्प्रदाय है। संस्कृत आचार्य वामन रीति को काव्य की आत्मा मानते हैं।

रस : आनन्द, आचार्य भरत के अनुसार विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी (संचारी) भाव के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है।

अलंकार : शब्द और अर्थ की शोभा बढ़ाने वाले धर्म को अलंकार कहते हैं।

10.11 उपयोगी पुस्तकें

हिंदी साहित्य का इतिहास – संपा. डॉ. नगेन्द्र, मयूर प्रकाशन

काव्यशास्त्र – भागीरथ मिश्र, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी

काव्य के तत्व – देवेन्द्रनाथ शर्मा, लोकभारती प्रकाशन

भारतीय काव्यशास्त्र की भूमिका – डॉ. नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस

भारतीय एवं पाश्चात्यकाल सिद्धान्त – गणपति चंद्र गुप्त, लोकभारती प्रकाशन

काव्यार्थ चिन्तन – जी. एस. शिवरुद्रप्पा, साहित्य अकादमी

भारतीय काव्यशास्त्र – प्रो. योगेन्द्र प्रताप सिंह, लोकभारती प्रकाशन

हिंदी साहित्य का अतीत (दूसरा भाग–श्रृंगार काल) – आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, वाणी प्रकाशन

BHDC-106.indd 136 19-03-2021 08:51:37

10.12 बोध प्रश्न

1) रीति सम्प्रदाय की विवेचना के क्रम में 'रीति' का अर्थ स्पष्ट कीजिए।

2) आचार्य वामन के मतानुसार रीति कितने प्रकार की होती है।

3) प्रमुख रीति समर्थक आचार्यों का नामोल्लेख कीजिए।

4) रीति और गुण के विषय में चर्चा कीजिएं

10.13 बोध प्रश्नों के उत्तर

1) देखिए भाग 10.3

2) देखिए भाग 10.8

3) देखिए भाग 10.4

4) देखिए भाग 10.5

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY